सितंबर १९९३ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

बुद्ध और बिंबिसार

जीवक की प्रसिद्धि

बिंबिसार के भगंदर के रोग का ठीक उपचार कर देने के कारण जीवक की बड़ी प्रसिद्धि हुई। विशेषकर रनिवास में और राजदरबार के राजपुरुषों में।

राजगृह का नगरश्रेष्ठि

उन दिनों की परम्परा के अनुसार नगरश्रेष्ठि एक महत्वपूर्ण राजपुरुष हुआ करता था। राजगृह के नगर श्रेष्ठि को ऐसा सिरदर्द का रोग हुआ जिसकी चिकित्सा नामी-नामी वैद्य नहीं कर सके थे। स्थिति इतनी बदतर हो गई थी कि उसका जीवन खतरे में पड़ गया था। किसी वैद्य ने उसके सातवें दिन मरने की भविष्यवाणी की, किसी ने पांचवें दिन। नगर के निगमपति ने बिंबिसार से प्रार्थना की कि वह जीवक को श्रेष्ठि के इलाज के लिए आदेश दे। नगरश्रेष्ठि राजा के लिए और निगम के लिए बहुत उपयोगी था। राजा ने जीवक को इलाज के लिए भेजा। श्रेष्ठि मृत्यु का ग्रास बनने वाला था। उसके बचने की कोई संभावना नहीं थी। अतः उसने जीवक को कहा कि यदि वह उसके प्राण बचा दे तो वह अपनी सारी सम्पत्ति जीवक को देकर आजीवन उसका दास बन जाएगा।

जीवक ने उसके सिर की शल्य-चिकित्सा की।परंतु इसके पहले उससे वचन ले लिया कि वह छः महीने एक करवट तथा छः महीने दूसरी करवट तथा छः महीने चित्त लेटा रहेगा। जीवक ने उसकी खोपड़ी चीर कर उसमें से रोग के जंतु बाहर निकाले और खोपड़ी बंद कर चमड़े की सिलाई करके उस पर लेप लगाया। उसे एक करवट लेटा दिया। एक सप्ताह में ही श्रेष्ठि करवट बदलने के लिए व्याकुल हो उठा। जीवक ने उसे छः महीने तक एक करवट लेटे रहने का वचन याद दिलाया, परंतु श्रेष्ठि के लिए यह असंभव था। जीवक ने उसे दूसरी करवट लेटाया। दूसरी करवट भी वह छः महीने नहीं लेट सका, अतः सातवें दिन चित्त लेटाया। इस अवस्था में भी वह सात दिन ही लेट सका और तड़फड़ाने लगा तब जीवक ने उसे उठा खड़ा किया। वह भला-चंगा था, निरोगी हो चुका था। जीवक ने कहा – यदि मैं छः महीने का वायदा न करवाता तो तुम सात दिन भी एक अवस्था में नहीं लेट पाते।

श्रेष्ठि ने स्वस्थ होकर अपना सर्वस्व अर्पित करने का वचन निभाना चाहा। जीवक ने उससे केवल दो लाख मुद्राएं ली, एक लाख अपने लिए और एक लाख महाराज बिंबिसार के लिए।

काशी का श्रेष्ठिपुत्र

अब जीवक की प्रसिद्धि और अधिक फैलने लगी। काशी के नगरसेठ के पुत्र को पेट का रोग हो गया था। वह कुछ नहीं खा सकता था। भात का पानी पीता और भात खाता, वह भी उसे ठीक से नहीं पचता था। मल-मूत्र भी ठीक से नहीं होता था। इस रोग के मारे वह अत्यंत दुर्बल और दुर्वर्ण हो गया था। मात्र हड्डी का ढांचा रह गया था। उसके बचने की कोई आशा न देख कर उसके पिता ने महाराज बिंबिसार से जीवक की सेवा मांगी। बिंबिसार ने जीवक को चिकित्सा के लिए काशी भेजा। जीवक ने श्रेष्ठिपुत्र के रोग का निदान किया और उदर की शल्य-चिकित्सा की। पेट चीर कर आंतें बाहर निकाली, उनमें पड़ी गांठ को काट कर दूर किया। आंतें सुलझा कर, सी कर उनको पुनः पेट में डाल कर पेट की चमड़ी को सी कर लेप लगा दिया। श्रेष्ठिपुत्र अचिर काल में पूर्ण स्वस्थ हो गया। पिता ने पुत्र को भला-चंगा देख कर संतुष्टि, प्रसन्नता से भर कर राजवैद्य जीवक को सोलह हजार मुद्राएं पारिश्रमिक के रूप में दी।

राजा प्रद्योत

अब जीवक की यश-कीर्ति दिग्-दिगंत में फैलने लगी। दूर-दूर के धनी लोग, राजा-महाराजाओं की ओर से उपचारार्थ उसकी मांग आने लगी। उन दिनों अवन्ति नरेश प्रद्योत को पांडु रोग हो गया था। अनेक नामिक और अनुभवी वैद्य चिकित्सा करने में असफल रहे। आखिरकार प्रद्योत ने महाराजा बिंबिसार को संदेश भेजा कि उसके इलाज के लिए राजवैद्य जीवक को उज्जैन भेजें। महाराज बिंबिसार का उज्जैन-नरेश से अच्छा मैत्री-संबंध था। अतः उसने जीवक को उज्जैन जाकर राजा की चिकित्सा करने के लिए आदेश दिया। जीवक उज्जैन पहुँचा। वहां उसने राजा प्रद्योत के शरीर की परीक्षा की और रोग का मूल कारण जान गया। जब वह चिकित्सा के लिए तैयार हुआ तो प्रद्योत ने कहा –तुम मुझे चाहे जैसी औषधि देना पर भूल कर भी घी मत पिला देना। मुझे घी से बेहद चिढ है, नफरत है।

जीवक ने समझा कि वह घी से बनी औषधियुक्त रसायन से ही निरोग हो सकता है और कोई चारा नहीं है। अतः उसने औषधि तैयार की। उसे घी में मिला कर अन्य रसायनों द्वारा घी का रंग, रूप, गंध और स्वाद आदि सब बदल दिये। राजा उस औषधि का सेवन करते हुए यह जरा भी नहीं जान पाएगा कि यह घी है और उसे पी जाएगा। परंतु कुछ समय बाद उसे उल्टी होगी, तब वह जान जाएगा कि उसे घी ही पिलाया गया है।

जीवक जानता था कि प्रद्योत बड़ा क्रोधी स्वभाव का व्यक्ति है। इसीलिए चंड प्रद्योत कहलाता है। अतः उसने बचाव का रास्ता पहले से ढूंढ़ लिया। उसने घी की बनी हुई दवा देने के पहले ही राजा से कहा कि वैद्य होने के नाते अनुकूल नक्षत्र देख कर उसे नगर के बाहर वन-प्रदेश में जड़ी-बूंटियां ढूंढ़ने जाना होता है। अनुकूल नक्षत्र रात-दिन किसी भी समय हो सकता है। अतः उसे इस बात की छूट मिलनी चाहिए कि राज्य की घुड़साल और हस्तिसाल से जिसे पसंद करे, उस घोड़े या हाथी को लेकर बिना रोक-टोक के नगर के बाहर आ सके और जा सके ।राजा प्रद्योत ने इस बात की उसे पूरी छूट दी और संबंधित राज्य कर्मचारियों को इस छूट की सूचना दे दी।

जीवक ने औषधि-मिश्रित घी राजा को पिलाया और तत्काल हस्तिशाला से भद्रावती नाम की हथिनी को लेकर नगर के बाहर

निकल गया। यह हथिनी तीव्र गति से चलने वाली थी और दिन भर में पचास योजन की यात्रा पूरी कर सकने की क्षमता रखती थी।

राजा प्रद्योत को औषधि लेते हुए यह जरा भी भान नहीं हो सका कि यह घी में पकाई गई है। परंतु कुछ समय बाद उसे उल्टी हुई तब उसे पता चला कि वैद्य ने उसके साथ दगा किया है। वह आग-बबूला हो उठा। उसने जीवक को पकड़ लाने का हुक्म दिया। तब उसे पता चला कि वह शीघ्रगामिनी भद्रावती हथिनी पर सवार होकर नगर के बाहर निकल चुका है। राजा का एक सेवक था। नाम था – काक केवल वही एक ऐसा व्यक्ति था जो शीघ्रगामी था और बिना रुके साठ योजन की यात्रा पूरी कर सकता था। उसे भद्रावती का पीछा करने के लिए भेजा गया और आदेश दिया गया कि किसी भी प्रकार वह जीवक को वापिस लाये। उसे यह भी चेतावनी दी गई कि वह जीवक के हाथ से भोजन न ग्रहण करे। ये वैद्य बड़े मायावी होते हैं, न जाने क्या खिला दें और अपना स्वार्थ साध लें।

काक भद्रावती का पीछा करता हुआ तीव्रगति से चल पड़ा परंतु जब उसके समीप पहुँचा तब तक हथिनी अवन्ति की सीमा के बाहर निकल चुकी थी। जीवक से काक की भेंट पड़ोसी राज्य कोशांबी में हुई, जहां वह कुछ देर के लिए विश्राम कर, कलेवा कर रहा था। काक ने जीवक से वापस लौट चलने के लिए कहा, परंतु जीवक ने कहा कि पहले कुछ आहार कर ले। उसने काक को भी भोजन का आमंत्रण दिया पर काक को राजाज्ञा याद थी। उसने भोजन अस्वीकार किया। जीवक ने भोजनोपरांत एक आंवला खाने को निकाला और काक से कहा, कम से कम आधा आंवला तो खाकर देखे। काक ने सोचा कि जब जीवक स्वयं खा रहा है और उसी आंवले का आधा भाग उसे खाने को दे रहा है तो खाने में क्या दोष है? इसमें कोई धोखा नहीं हो सकता। काक ने स्वीकार किया। जीवक ने बड़ी कुशलतापूर्वक आधा आंवला काक को देते हुए अपने नाखून में रखी औषधि उसमें गड़ा दी। आंवला खाते ही काक अत्यंत अस्वस्थ हो गया। उसने जीवक से कहा –आचार्य! अभी मैं और जीना चाहता हूं।

जीवक ने उत्तर दिया कि तुम चिंता न करो। तुम भी शीघ्र स्वस्थ हो जाओगे और तुम्हारे राजा प्रद्योत भी। वह चंड स्वभाव का व्यक्ति है। उसे घी मिली औषधि खिलाने से कुपित होगा और कुपित होकर मुझे मरवा भी सकता था, इसीलिए मैं निकल आया।

यह कहकर जीवक ने भद्रावती हथिनी काक के हवाले कर राजगृह की यात्रा पर चल पड़ा। घर पहुँच कर सारा वृत्तांत राजा बिंबिसार को कह सुनाया। बिंबिसार ने जीवक की बुद्धिमानी की प्रशंसा की।

इस बीच राजा प्रद्योत जीवक की दवा की एक ही खुराक के कारण अपने पुराने पांडु रोग से पूर्णतया मुक्त हो गया, अतः प्रसन्न होकर जीवक को इनाम देने के लिए आमंत्रित किया पर जीवक नहीं गया। उसने कहला भेजा कि राजा केवल मेरे उपकार को याद रखें, यही पर्याप्त है।

आखिर राजा प्रद्योत ने कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए जीवक को एक बहुमूल्य दुशाला भेजा। जीवक ने सोचा कि ऐसा दुशाला तो बिंबिसार या स्वयं भगवान बुद्ध के प्रयोग करने के अनुकूल है। वह उसे भगवान बुद्ध को अर्पित किया चाहता था। भगवान उन दिनों अपने भिक्षु-संघ सहित पुराने पांसुकूल चीवर पहनते थे। जीवक जानता था कि वह नया दुशाला नहीं लेंगे, अतः वह योग्य अवसर की प्रतीक्षा करता रहा।

इस बीच भगवान को कब्जियत की शिकायत हुई। छः वर्ष की दुश्कर तपश्चर्या के कारण उन्हें कभी-कभी उदर रोग हो जाया करता था। भगवान ने आनन्द के जरिये जीवक को सूचना भेजी। जीवक ने आकर भगवान का रोग समझा। भगवान ने विरेचन के लिए कोई जुलाब चाही। जीवक ने सोचा, भगवान को सामान्य जुलाब नहीं दी जानी चाहिए। उसने तीन कमलनाल को उपयुक्त औषधियों से भावित किया। आनन्द से कहा कि भगवान के शरीर को स्निग्ध करे। आनन्द ने ऐसा ही किया। वैद्यराज जीवक ने कमलनाल से बनी औषधि भगवान को दी और उनसे प्रार्थना की कि वह उसे तीन बार सूंघे। दवा सूंघने पर भगवान को तीस बार जुलाब होगा और वह इस कब्जियत के रोग से विमुक्त हो जाएंगे। भगवान ने औषधि सूंघी, उन्हें उनतीस बार जुलाब हुआ। जीवक ने चिंतन किया और कहा कि अब आप गर्म पानी से स्नान कर लें। स्नान के पश्चात् उन्हें तीसवां जुलाब होगा और वे पूर्णतया स्वस्थ हो जाएंगे और यही हुआ। भगवान को जुलाब हो जाने के बाद जीवक ने उन्हें कुछ दिनों तक केवल जूस के आहार पर रखा।

जब भगवान पूर्णतया स्वस्थ हो गये तो एक दिन जीवक राजा प्रद्योत से प्राप्त हुआ दुशाला साथ लेकर भगवान के पास गया और नमन कर बोला – भंते भगवान, मैं एक वरदान चाहता हूं?

– "भगवान वरदान के परे हो गये हैं।" भगवान ने इसका उत्तर दिया।

– "भगवान यह वरदान उपयुक्त है, निर्दोष है", जीवक ने कहा।

– "तो कहो, जीवक!" भगवान ने कहा।

इस पर जीवक ने कहा कि भगवान यह दुशाला मुझे राजा प्रद्योत ने भेजा है। आप इसे स्वीकार करें और आज से भिक्षुसंघ को भी छूट दें कि यदि वह चाहें तो फटे-पुराने पांसुकूल चीवर पहनें, अथवा किसी सद्गृहस्थ द्वारा दान दिये जाने पर नये सिले चीवर भी ग्रहण करें। भगवान! इससे सद्गृहस्थों को विपुल पुण्य-लाभ होगा और मुझे भी।

भगवान ने मुस्करा कर अनुमति दी। जीवक भगवान को दुशाले का दान देकर धन्य हुआ। अन्यान्य गृहस्थ नये सिले चीवर दान देकर धन्य हुए। सब का मंगल हुआ।

मंगल मित्र,
स. ना. गो.

साधकों के उद्गार

मुंबई से नंदकुमार बागुल लिखते हैं, "दिसंबर में मेरा छठाँ तथा पत्नी दीपा का का पहला शिविर संपन्न हुआ। इस शिविर के दौरान मेरी मानसिक स्थिति बहुत ही डावांडोल रही और शारीरिक

स्तर पर पीछे मेरुदंड और दाहिने पांव के तलवे पर एक जैसा लगातार दु:खद स्पंदन चलता रहा। मगर फिर भी यथाशक्ति चित्त को समता से स्थापित करता रहा। अनित्यबोध दृढ़ करता रहा। इसलिए शिविर के अंत में बड़ा उत्साह, बड़ी स्फूर्ति जागी।

सही धर्म का एक गुण है कि भटके हुए मनुष्य को आमूल बदल देता है, यह बात मैंने अपने अनुभव से जानी। बिना धर्म मनुष्य के जीवन में न कोई दिशा है, न ध्येय। दु:ख से दु:ख की ओर ही भागता रहता है। धर्म मनुष्य के जीवन में एक नयी चेतना जगाता है, बशर्ते जब कोई धर्म अपने जीवन-व्यवहार में लाये, वैसा आचरण करे।

मेरी पत्नी सौ. दीपा का भी अनुभव अच्छा रहा। विशेषत: शिविर के दौरान वह गर्भवती थी। उसने एक पुत्र को जन्म दिया। भीतर से खूब धर्मकामना जागती है कि ऐसे नये-नये जन्मे बालक कितने भाग्यशाली हैं, जिन्हें गर्भ में ही इतना अनमोल धर्म मिल गया हो। इतनी कल्याणकारी विपश्यना साधना मिल गई हो। ऐसा लगता है पिछले जन्मों में ये बालक-बालिकाएं धर्म के रास्ते पर खूब चले होंगे।

इसलिए भीतर से धर्मकामना जागती है कि आनेवाले दिनों में ये इस दु:खी संसार के अनेक लोगों के कल्याण के कारण बनें! उनकी सही भलाई के लिए प्रेरक बनें! सारे संसार में धर्म खूब फले-फूले,खूब बढ़े! समस्त मानव जाति और सारी जीवसृष्टि का मंगल करे! सारे लोग स्वस्थ-शांत हों! फिर एक बार जन-जन में खुशी की लहर जागे!"

दीर्घ-शिविर के साधकों के उद्गार

जर्मनी का हेल्वैज हेन्स लिखता है, "शिविर के पहले एक दो दिन तो सदा की भांति कुछ थकावट के साथ तथा भटकते मन को लेकर शुरू हुए। जैसे ही मन ध्यान के आलंबन से भटक जाने को जानता है, क्या हुआ, आगत अनागत में रमण; बातूनी हुआ, चंचल हो गया, आदि मन का एक छोटा विवरण तथा फिर आलंबन पर लगाने का प्रयास। कभी मन बड़ा शांत हो जाता है और ५० मिनटों तक बिना किसी बाधा के आलंबन पर बना रहता है। इस बीच विचार आने, आलंबन से भटक जाने अथवा सजगता खोने का फौरन पता चल जाता था। सामान्यत: इस लम्बी आनापान सति काल में मन और तन काफी सुखी, स्थिर तथा प्रसन्न रहते है। व्यक्तिगत रूप से इस विषय के समस्वर अनुभूत करता हूं और भारी तूफानों में भी जब विपश्यना का अभ्यास होता है – आनापान की सहायता से शांत होना आसान होता है अथवा फिर एकाग्रता प्राप्त करना सुगम हो जाता है। नासिका के नीचे संवेदनाओं की अनुभूति प्रखर हो सकती है। विपश्यना की ओर बदलते हुए मुझे उस आलंबन पर काम करने में कुछ बैचेनी सी हुई। प्रारम्भ में मन शरीर पर घुमाने के प्रयास को अस्वीकार करता लगा, लेकिन दो तीन दिन में शरीर को जांचना कोई समस्या नहीं रही। तब तो एक अकेले दिन में ही अकसर अनुभूति एवं एकाग्रता के स्तरों में काफी विभिन्नताएं रहती हैं। यह तो आवश्यक नहीं कि दिन के किसी निश्चित समय ही ऐसा हो, किंतु फिर भी एक ही प्रकार का घटनाचक्र अथवा आवर्त्तन-प्रणाली-सी लगती है। रात के समय नींद आने से पहले मन घंटे-आधे घंटे तक संवेदनाओं के साथ रहता है जब तक खूब ऊब नहीं जाता और सोना चाहता है। सामान्यत: फिर से तरोताजा होने और काम से लगजाने के लिए ४-५ घंटों की नींद पर्याप्त लगती है। एक बार तो स्वप्न में कीचड़ में फिसलने से सारा शरीर सन जाने पर जागृत होने पर पूरे शरीर में धारा प्रवाह की अनुभूति होती रही। केवल कुछ ही बार वास्तविक तूफानों में अनुसति के प्रयोग की आवश्यकता पड़ी अन्यथा आनापान तथा शरीराग्रों ही से मन को शांत करने का काम चल जाता था। वैसे तो विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं की भिन्न अनुभूतियां तथा चेतना को पूरे शरीर में घुमाने की विभिन्न क्षमताओं का अनुभव हुआ। क्या कर रहा हूं इसका शास्त्रीय ज्ञान काफी स्पष्ट हो गया है। सम्यक दृष्टि तथा सम्यक आलंबन से प्रक्षेपण की बात अनुभव के आधार पर बडी महत्वपूर्ण है।"

शरीर-च्युति

कानपुर के एम. एल. संखवार ने लिखा है कि उनके पिता श्री द्वारिकाप्रसाद को पिछले डेढ़ महीने से कैंसर का रोग था परंतु विपश्यना के तीन शिविरों से उन्होंने जो शक्ति प्राप्त की थी, उसके परिणामस्वरूप उनको कोई अधिक दर्द नहीं महसूस हुआ, जबकि कैंसर का दर्द बड़ा असहनीय होता है। अंत समय तक वे सब के लिए सुख की ही कामना करते रहे। उन्होंने प्रथम शिविर ९१ में सारनाथ में, दूसरा कानपुर में और तीसरा मेरे साथ इगतपुरी में फरवरी,९३ में पूरा किया था। अंतिम समय उनके मन में कोई लालसा नहीं थी। शरीरांत के पश्चात ऐसा मालूम हो रहा था कि वे शांति से सोये हुए हैं।

इसी प्रकार सब का मंगल हो!

शुल्क -सूचना

अब सभी साधकों के शुल्क कंप्युटर में उनकी पत्रिका भेजने की सूची के साथ संबद्ध कर दिये गये हैं, अत: अवधि समाप्त होते ही पत्रिका स्वत: बंद हो जाया करेगी। इसलिए वार्षिक शुल्क दाताओं से अनुरोध है कि वे अपनी पत्रिका पर चिपकाए पते को ध्यान से देखें, जिस पर शुल्क-समाप्ति की अंतिम तिथि छपी है। कृपया इससे पहले अपना रिन्यूअल करा लें, ताकि बंद होने की नौबत ही न आए। जो साधक चाहें वे रू.१००/- एक साथ भेजकर आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

पत्रिका पर कुछ संक्षिप्त कोड और लिखे होते हैं जैसे L=Life, Y=Yearly & P=Privilege याने जो शुल्क नहीं दे सकते। पी **वालों को भी अपनी रुचि के अनुसार निवेदन दुहराना चाहिए, ताकि उनकी प्रति चालू रहे।**

व्यवस्थापक